

जैन आचार संहिता द्वारा पर्यावरण संरक्षण

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय,
राजस्थान

जैन धर्म में "पर्यावरण" शब्द का प्रयोग प्राकृतिक पर्यावरण तक ही सीमित न होकर प्राणि जगत् तथा मानव-जीवन से संबंधित आत्मिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक प्रदूषण का मूल कारण आत्मिक विकार है। आत्मिक विकार का क्रियात्मक रूप विषय भोग है। भोगवादी संस्कृति ने ही समस्त पर्यावरण प्रदूषणों को उत्पन्न किया है। इन प्रदूषणों से मुक्ति पाने का उपाय जैन धर्म में श्रावक व्रतों का पालन बताया गया है। यहाँ इसी पर विस्तार से विवेचन किया जा रहा है।

पर्यावरण शब्द "परि" उपसर्गपूर्वक "आवरण" शब्द से बना है। जिसका अर्थ है जो चारों ओर से आवृत किए हो, चारों ओर छाया हुआ हो, चारों ओर से घेरे हुए हो। पर्यावरण शब्द का अन्य समानार्थक शब्द है— वातावरण। वातावरण का शाब्दिक अर्थ वायुमंडल होता है, परन्तु वर्तमान में 'वातावरण' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसे कहा जाता है कि व्यक्ति जैसे वातावरण में रहता है उसके वैसे ही भले-बुरे संस्कार पड़ते हैं। इस रूप में पर्यावरण शब्द भारत के प्राचीन धर्मों में वातावरण अर्थात् मानव-जीवन से संबंधित सभी क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। पर्यावरण दो प्रकार का होता है— परिशुद्ध, अशुद्ध। जो पर्यावरण जीवन के लिए हितकर होता है, वह परिशुद्ध पर्यावरण है और जो पर्यावरण जीवन के लिए अहितकर होता है वह अशुद्ध पर्यावरण है। इसी अशुद्ध पर्यावरण को प्रदूषण कहते हैं।

पाश्चात्य देशों में प्रदूषण शब्द प्राकृतिक प्रदूषण का सूचक है। परन्तु भारतीय धर्मों में विशेषतः जैन धर्म में पर्यावरण प्रदूषण केवल प्रकृति तक ही सीमित नहीं हैं, प्रत्युत आत्मिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि जीवन से संबंधित समस्त क्षेत्र इसकी परिधि में आते हैं। जीवन से संबंधित ये सभी क्षेत्र परस्पर जुड़े हुए हैं। इनमें से किसी भी एक क्षेत्र में उत्पन्न हुए प्रदूषण का प्रभाव अन्य सभी क्षेत्रों पर पड़ता है। जैन धर्म में प्रदूषण, दोष, पाप, विकार, विभाव एकार्थक शब्द हैं। जैन धर्म सभी क्षेत्रों के प्रदूषणों का मूल कारण आत्मिक प्रदूषण को मानता है, शेष सभी प्रदूषण इसी प्रदूषण के कटु फल, पत्ते व कांटे हैं। अतः जैन धर्म मूल प्रदूषण को दूर करने पर जोर देता है और इस प्रदूषण के मिटने पर ही अन्य प्रदूषण मिटाना संभव मानता है, जबकि अन्य संस्थाएँ, सरकारें, राजनेता प्राकृतिक प्रदूषण को मिटाने पर जोर देते हैं। परन्तु उनके इस प्रयत्न से प्रदूषण मिट नहीं पा रहा है। एक रूप से मिटने लगता है तो दूसरे रूप में फूट पड़ता है, केवल रूपान्तरण मात्र होता है, जबकि जैन वाङ्मय में

प्रतिपादित सूत्रों से सभी प्रकार के प्रदूषण समूल रूप से नष्ट हो सकते हैं। इसी विषय का अति संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

ऊपर कहा गया है कि समस्त प्रदूषणों का मूल कारण है— आत्मिक प्रदूषण अर्थात् आत्मिक विकार। आत्मिक विकार हैं— हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि। इन्हें पाप कहा जाता है। इन सब पापों की जड़ है विषय—कषाय से मिलने वाले सुखों के भोग की आसक्ति। भोगों की पूर्ति के लिये भोग सामग्री व सुविधा चाहिये। भोगजन्य, सुख सामग्री व सुविधा प्राप्ति के लिये धन सम्पत्ति चाहिये। धन प्राप्त करने के लोभ से ही मानव हिंसा, झूठ, चोरी, संग्रह, परिग्रह, शोषण आदि दूषित कार्य करता है, स्वास्थ्य के लिये हानिकारक वस्तुओं का उत्पादन करता है, असली वस्तुओं में हानिप्रद नकली वस्तुएँ मिलाता है, कई प्रकार के प्रदूषणों को जन्म देता है। वर्तमान में विश्व में जितने भी प्रदूषण दिखाई देते हैं, इन सबके मूल में भोग लिप्सा व लोभ वृत्ति ही मुख्य है।

जब तक जीवन में भोगवृत्ति की प्रधानता रहेगी तब तक भोग सामग्री प्राप्त करने के लिये लोभवृत्ति भी रहेगी। कहा भी है कि लोभ पाप का बाप है अर्थात् जहाँ लोभ होता है वहाँ पाप की उत्पत्ति होगी ही। पाप प्रदूषण पैदा करेगा ही। अतः प्रदूषण के अभिशाप से बचना है तो पापों से बचना ही होगा, पापों को त्यागना ही होगा। **पापों का त्याग ही जैन धर्म की समस्त साधनाओं का आधार व सार है।** पापों से मुक्ति को ही जैन धर्म में मुक्ति कहा गया है। अतः जैन धर्म में अनगार एवं आगार ये दो प्रकार के धर्म कहे गये हैं। अनगार धर्म को धारण करने वाले गृहस्थ होते हैं। उनके लिये बारह व्रत धारण करने एवं कुव्यसनों के त्याग का विधान किया गया है। यही आगार धर्म प्रदूषणों से बचने का उपाय है। इसी परिप्रेक्ष्य में यहाँ बारह व्रतों का विवेचन किया जा रहा है।

(1) स्थूल प्राणातिपात का त्याग

पहला व्रत है — स्थूल प्राणातिपात का त्याग करना। प्राणातिपात उसे कहा जाता है जिससे किसी भी प्राणी के प्राणों का घात हो। प्राण 10 कहे गये हैं — 1. श्रोत्रेन्द्रिय बलप्राण 2. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण 3. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण 4. रसनेन्द्रिय बलप्राण 5. स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण 6. मन बलप्राण 7. वचन बलप्राण 8. काय बलप्राण 9. श्वासोच्छ्वास बलप्राण और 10. आयुष्य बलप्राण। इन दस प्राणों में से किसी भी प्राण को आघात लगे, हानि पहुँचे वह प्राणातिपात है। वह प्राणातिपात प्राणी का ही अर्थात् चेतना का ही होता है, निष्प्राण अचेतन का नहीं। क्योंकि अचेतन (जड़) जगत् पर प्राकृतिक प्रदूषण या अन्य किसी भी प्रकार के प्रदूषण का कोई भला—बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है, न ही उसे सुख—दुःख होता है। अतः प्रदूषण का संबंध प्राणी से ही है। इस प्रकार प्रत्येक प्रदूषण से प्राणी के ही प्राणों का प्राणातिपात होता है। इसी प्राणातिपात को वर्तमान में प्रदूषण कहा जाता है। अतः प्रत्येक प्रकार का प्रदूषण प्राणातिपात है, प्राणातिपात से बचना प्रदूषण से बचना है, प्रदूषण से बचना प्राणातिपात से बचना है।

जैन धर्म में समस्त पापों का, दोषों का, प्रदूषणों का मूल प्राणातिपात को ही माना गया है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्राणी प्राणातिपात या प्रदूषण क्यों करते हैं? उत्तर में कहना होगा कि प्राणी को शरीर मिला है, इससे उसे चलना, फिरना, बोलना, खाना, पीना, मल—विसर्जन आदि कार्य व क्रियाएँ करनी होती हैं,

परन्तु इन सब क्रियाओं में प्रकृति का सहज रूप से उपयोग करे तो न तो प्रकृति को हानि पहुंचती है और न प्राणशक्ति में कमी होती है। इससे प्राणी के जीवन तथा प्रकृति का संतुलन बना रहता है। यही कारण है कि लाखों- करोड़ों वर्षों से इस पृथ्वी पर पशु-पक्षी मनुष्य आदि प्राणी रहते आए हैं, परन्तु प्रकृति का संतुलन बराबर बना रहा। पर जब प्राणी के जीवन का लक्ष्य सहज प्राकृतिक/स्वाभाविक जीवन से हटकर भोग भोगना हो जाता है तो वह भोग के सुख के वशीभूत हो कर अपने हित-अहित को, कर्तव्य- अकर्तव्य को भूल जाता है।

वह भोग के वशीभूत हो कर वह कार्य भी करने लगता है जिसमें उसका स्वयं का ही अहित हो। उदाहरणार्थ- किसी भी मनुष्य से कहा जाय कि तुम्हारी आंखों का मूल्य पांच लाख रुपये देते हैं, तुम अपनी दोनों आंखें हमें बेच दो तो कोई भी आंखें बेचने को तैयार नहीं होगा, क्योंकि वह आंखों को अमूल्य मानता है। परन्तु वही मनुष्य चक्षु इन्द्रिय के सुखभोग के वशीभूत हो कर टेलीविजन, सिनेमा आदि अधिक समय देखकर अपनी आंखों से अधिक काम लेकर इनकी शान्ति क्षीण कर देता है। वह अपनी आंखों की अमूल्य प्राण शक्ति को हानि पहुंचाकर अपना ही अहित कर लेता है। यही बात कान, जीभ आदि समस्त इन्द्रियों के प्राणातिपात पर घटित होती है। जैन धर्म में पृथ्वी, पानी, हवा तथा वनस्पति में जीव माना गया है, परन्तु मनुष्य अपनी सुख-सुविधा एवं संपत्ति के लोभ से इनका प्राण हरण कर इन्हें निर्जीव, निष्प्राण एवं प्रदूषित कर रहा है, यथा -

- (i) **पृथ्वीकाय का प्राणातिपात प्रदूषण** - कृषि भूमि में रासायनिक खाद एवं एन्टीबायोटिक दवाएँ डालकर भूमि को निर्जीव बनाया जा रहा है जिससे उसकी उर्वरा शक्ति/प्राणशक्ति नष्ट होती है। परिणामस्वरूप भूमि बंजर हो जाती है फिर उसमें कुछ भी पैदा नहीं होता है तथा रासायनिक खाद से पैदा हुई फसल शरीर के लिए हानिकारक एवं प्रदूषित होती है।

भूमि का दोहन करके खानें खोदकर, खनिज पदार्थ, लोहा, तांबा, कोयला, पत्थर आदि प्रतिवर्ष करोड़ों टन निकाला जा रहा है, उसे निर्जीव बनाया जा रहा है तथा उसे कौड़ियों के भाव में विदेशों को विदेशी मुद्रा अर्जन करने के लिए बेचा जा रहा है। भले ही इस भूमि दोहन से भावी पीढ़ियों के लिये वह खनिज पदार्थ न बचे, भावी पीढ़ियाँ इन पदार्थों के लिये तरह-तरह कर मरें, अपने पूर्वजों के इस दुष्कर्म का फल अत्यन्त दुःखी होकर भोगें, इस बात की चिन्ता वर्तमान पीढ़ी व सरकारों को कतई नहीं है। यह बात पेट्रोलियम पदार्थों पर भी घटित होती है। उसका भी इसी प्रकार भयंकर दोहन हो रहा है। आज विश्व में पचास करोड़ कारें, लाखों दुपहिया वाहन, करोड़ों कारखानों में अरबों टन पेट्रोल जलाया जा रहा है जिससे पेट्रोल के भंडार खाली होते जा रहे हैं। इससे एक दिन भावी पीढ़ियों के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। इस प्रकार पेट्रोल तथा लोहा आदि वस्तुओं का दोहन तथा इनसे पैदा होने वाला वायु-प्रदूषण व तापमान वृद्धि का दुष्प्रभाव- ये सब भावी पीढ़ियों के लिए अभिशाप बनने वाले हैं।

- (ii) **अपकाय का प्राणातिपात प्रदूषण** - जल में अन्य पदार्थ मिलने से अपकाय के जीवों के प्राणों का हरण होता है यही जल प्रदूषण है, वर्तमान काल में धन कमाने के लिये बड़े-बड़े कारखाने लगे हैं, उनमें प्रतिदिन

करोड़ों— अरबों लीटर जल का उपयोग होता है। वह सब जल प्रदूषित हो जाता है, रासायनिक पदार्थों के संपर्क से, नगर के गंदे नालों का जल मल-मूत्र आदि गंदगी से दूषित होता जा रहा है। यह दूषित जल धरती में उतरकर कुओं के जल को तथा नदी में गिरकर नदी के जल को दूषित करता जा रहा है तथा दूषित जल के कीटाणुओं को नाश करने के लिये पीने का पानी की टंकियों में पोटेशियम परमैंगनेट मिलाया जा रहा है जो स्वास्थ्य के लिये अहितकर है। नलों से भी जल का बहुत अपव्यय होता है। यह सब जल का प्रदूषण ही है। जैन धर्म में एक बूंद जल भी व्यर्थ गिराना पाप तथा बुरा माना गया है। अतः जैन धर्म के सिद्धान्तों का पालन किया जाय तो जल के प्रदूषण से बचा जा सकता है।

(iii) **तेजस्काय का प्राणातिपात प्रदूषण** — जीवन के लिये जैसे जल और वायु आवश्यक हैं वैसे ही उष्णता भी आवश्यक है। यह आवश्यक उष्णता सूर्य से स्वतः प्राप्त होती रहती है। इस उष्णता से शरीर को कुछ भी हानि नहीं होती है अर्थात् यह उष्णता (उष्मा) पूर्ण रूप से प्रदूषण रहित होती है। परन्तु मनुष्य अतिरिक्त उष्णता प्राप्त करने के लिए कंड़े, कोयले, लकड़ी आदि जलाकर कृत्रिम उपायों से आग पैदा करता है। कोयला, लकड़ी, गैस आदि जलाने से जो आग उत्पन्न होती है उससे वातावरण प्रदूषित होता है। अंगीठी में कोयला, चूल्हें में लकड़ी, आदि के जलने से जो आग प्रज्वलित होती है, उससे कार्बन डाइऑक्साइड तथा कार्बन मोनोक्साइड आदि गैसों उत्पन्न होती हैं। ये गैसों श्वास के द्वारा फेंफड़ों में जाकर रक्त में घुल जाती है, जिससे रक्त का हिमोग्लोबिन घटता है और रक्त अशुद्ध हो जाता है। यह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त घातक है तथा मृत्यु का कारण भी बन जाता है। कमरे में अंगीठी जलाकर दरवाजा बंद कर देने से मृत्यु होने की घटनाएँ समाचार पत्रों में पढ़ने में आती ही रहती हैं।

वर्तमान में फैक्ट्रियों एवं वाहनों के संचालन में पेट्रोल तथा डीजल जलने से कार्बन मोनोक्साइड व सल्फर डाई ऑक्साइड गैसों निकलती हैं, फैक्ट्री से इन गैसों के साथ नाइट्रोजन ऑक्साइड गैस भी निकलती है। ये गैसों एसिड बनाती हैं जो स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है। ये गैसों वायुमण्डल में व्याप्त हो जाती हैं, जहाँ ये वर्षा के जल में घुलकर धरती पर बरसती हैं। इसे एसिड ड्रेन रेन कहते हैं। यह वर्षा पेड़, पौधों, पशु पक्षियों आदि जीवों के लिए तो घातक होती ही है, निर्जीव पदार्थों के लिए भी हानिकारक होती है। इन्हीं गैसों से उत्पन्न हुए एसिड से ताजमहल की दीवारों एवं सौन्दर्य को भारी क्षति पहुंची है।

उपर्युक्त सभी गैसों तापमान में वृद्धि करती हैं, जिससे समुद्रों में स्थित हिमखण्डों एवं पर्वतों पर स्थित ग्लेशियरों की बर्फ पिघल रही है। बर्फ के पिघलने से समुद्रों के जल की सतह ऊपर उठ रही है। वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि कुछ ही वर्षों में समुद्र की सतह इतनी ऊपर उठ जायेगी कि जिससे बंगाल आदि समुद्रों के तटों पर स्थित अनेक क्षेत्रों की भूमि जलमग्न हो जायेगी तथा पर्वतों से निकलकर ग्रीष्म ऋतु में बहने वाली नदियाँ सूख जायेंगी, जिससे खेती की सिंचाई की समस्या उत्पन्न हो

जायेगी। अणुबम और परमाणुबम से प्रज्वलित अग्नि तो इतना भीषण प्रदूषण पैदा करती है कि कुछ ही क्षणों में लाखों लोगों को मृत्यु की गोद में पहुंचा देती है और शेष रहे मनुष्यों को अपंग कर देती है तथा भावी संतान के लिए विकलांगता का खतरा पैदा कर देती है।

आशय यह है कि अग्निकाय का प्रदूषण मानव जाति के स्वास्थ्य एवं अस्तित्व के लिए भयंकर खतरनाक है। इसीलिए जैन साधु कृत्रिम अग्नि का उपयोग कभी नहीं करते हैं।

(iv) **वायुकाय का प्राणातिपात प्रदूषण** – वायु में विकृत तत्त्व मिलने से वायुकाय के प्राणों का प्राणातिपात होता है। यही वायु प्रदूषण है। बड़े कारखानों की चिमनियों से लगातार विषैला धुआं निकल कर वायु को दूषित करता जा रहा है, लाखों कारखानों में विषैली गैसों का उपयोग हो रहा है। वे गैसों वायु में मिलकर वायु में निहित प्राणशक्ति को क्षय कर रही हैं। इस प्रदूषण के प्रभाव से ध्रुवों में ओजोन परत भी क्षीण हो गई है, उसमें छेद होते जा रहे हैं, जिससे सूर्य की हानिकारक किरणें सीधे मानव शरीर पर पड़ेगी, फलस्वरूप कैंसर आदि भयंकर असंख्य असाध्य रोगों का खतरा उत्पन्न होने वाला है। वायु प्रदूषण से नगरों में नागरिकों को श्वास लेने के लिये स्वच्छ वायु मिलना कठिन हो गया है, दम घुटने लगा है, जिससे दमा/क्षय आदि रोग भयंकर रूप में फैलने लगे हैं। जैन धर्म में इस प्रकार के वायु के प्राणातिपात को, प्रदूषण को पाप माना गया है।

(v) **वनस्पतिकाय प्राणातिपात प्रदूषण** – जैनागम आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में वनस्पति की तुलना मनुष्य जीवन से की गयी है। जैसे मनुष्य का शरीर बढ़ता है, खाता है, उसी प्रकार वनस्पति भी बढ़ती है, भोजन करती है। वर्तमान में वनस्पतिकाय का प्राणातिपात भयंकर रूप से हो रहा है। लकड़ी के प्रलोभन से जंगल/वन काटे जा रहे हैं। पहले जहां पहाड़ों व समतल भूमि पर घने जंगल थे, जिनमें होकर पार होना कठिन था, जिन्हें अटवी कहा जाता था उनका तो आज नामोनिशान ही नहीं रहा। जो जंगल बचे हैं और जिन वनों को सरकार द्वारा सुरक्षित घोषित किया गया है, उन वनों में भी चोरी छिपे भयंकर कटाई हो रही है। इसका प्रभाव जलवायु पर पड़ा है। इनके कट जाने से आर्द्रता कम हो गई है जिससे वर्षा में बहुत कमी आ गई है। वन के घने जंगलों में लगे वृक्ष प्रदूषित वायु का कार्बनडाई ऑक्साइड ग्रहण कर बदले में ऑक्सीजन देकर वायु को शुद्ध करते थे वह शुद्धिकरण की प्रक्रिया अति धीमी हो गई है। फलतः वायु में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है, जो मानव जाति के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाइयों के डालने से कृषि उपज में अनाज, फल, फूल, दालों की संरचना में उनका दूषित प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जो स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है एवं पौष्टिक तत्त्वों, विटामिन एवं प्रोटीन का भी घातक है। यही कारण है कि अमेरीका में रासायनिक खाद से उत्पन्न हुए गेहूँ के भाव से बिना रासायनिक खाद से उत्पन्न हुए गेहूँ का भाव आठ गुना है।

(vi) **त्रसकाय प्राणातिपात** — दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव यथा—केंचुए, चींटी, मधुमक्खी, भौंरे, चूहे, सर्प, पक्षी, पशु आदि चलने फिरने वाले जीव त्रसकाय कहे जाते हैं। इन जीवों की उत्पत्ति प्रकृति से स्वतः होती है तथा संतुलन भी बना रहता है। ये सभी जीव फसल का संतुलन बनाये रखने में सहायक होते हैं। केंचुआ भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है। आज दवाइयों से इन जीवों का मार दिया जाता है, जिससे पैदावार में असंतुलन हो गया है तथा जीवों की अनेक प्रजातियां लुप्त हो गई हैं।

जैन धर्म में उपर्युक्त सब प्रकार के जीवों का प्राणातिपात करने वाले प्रदूषणों के त्याग का विधान किया गया है। यदि इस व्रत का पालन किया जाय तो पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति आदि को प्रदूषित हानि से सहज ही बचाया जा सकता है। फिर पर्यावरण के लिए तो किसी भी कानून को बनाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। इस प्रकार से अहिंसा पालन से पर्यावरण की समस्त समस्याओं का समाधान संभव है।

(2) **मृषावाद विरमण**

दूसरा व्रत है — झूठ का त्याग। अर्थात् जो वस्तु जिस गुण, धर्म वाली है उसे वैसी ही बताया जाय। आज चारों ओर व्यापार में मृषावाद का ही बोलबाला है। उदाहरण के लिए रासायनिक खाद दीर्घकाल की उपज की खेतों की उर्वरा शक्ति को नष्ट करने वाला है तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है, उसकी इन बुराइयों को छिपाकर उसे खेती के लिए लाभप्रद बताया गया है। इसी प्रकार सिन्थेटिक धागे के वस्त्र स्वास्थ्य के लिए अति हानिकर हैं, उनकी इस यथार्थता को छिपाया जाता है और उनके लाभ या गुण गाये जाते हैं। एन्टीबायोटिक दवाइयों से शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति में भयंकर कमी होती है, जिससे वृद्धावस्था में रोगों से प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं रहती है। इस तथ्य को छिपाया जाता है और धड़ल्ले से विज्ञापन द्वारा इसके लाभप्रद होने का प्रचार किया जाता है। आज का विज्ञापन दाता विज्ञापित वस्तु से दीर्घ काल में होने वाली भयंकर हानि को छुपाकर तथा उनके तात्कालिक लाभ को बढ़ा-चढ़ा कर बताकर जनता को मायाजाल में फंसाता है, यह धोखा है। जैन साधना में ऐसे कार्य को मृषावाद कहा गया है और इसका निषेध किया गया है। मृषावाद—त्याग के सिद्धान्त को अपना लिया जाय तो ऐसे प्रदूषणों से बचा जा सकता है।

(3) **अचौर्य व्रत**

अपहरण करना चोरी है। वर्तमान में अपहरण के नये-नये रूप निकल गये हैं। व्यापार द्वारा उपभोक्ताओं के धन का अपहरण तो किया ही जाता है, कल-कारखानों में श्रमिकों को श्रम का पूरा प्रतिफल न देकर श्रम का भी अपहरण किया जाता है, उनकी विवशता का लाभ उठाया जाता है। जीवनरक्षक दवाइयों के बीस-तीस गुणों दाम रखकर तथा नकली दवाइयाँ बनाकर रोगियों को मृत्यु के मुख में धकेला जाता है। लॉटरी के द्वारा गरीबों के कठिन श्रम से की गई कमाई का अपहरण किया जा रहा है। संक्षेप में कहें तो जितने भी शोषण के तरीके हैं वे सभी अपहरण के रूप हैं। बिना प्रतिफल दिये या कम प्रतिफल देकर अधिक लाभ उठाना शोषण या अपहरण है। यह अति भयंकर आर्थिक प्रदूषण है। इसी से आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है। इससे गरीब अधिक गरीब और धनवान अधिक

धनवान होते जा रहे हैं। इस विषमता से ही आज आर्थिक जगत् में भयंकर प्रतिद्वन्द्व व संघर्ष चल रहा है। युद्ध का भी प्रमुख कारण यह आर्थिक शोषण व प्रतिद्वन्द्विता या होड़ ही है। जैन धर्म में अपहरण व शोषण का त्याग प्रत्येक मानव के लिये आवश्यक बताया गया है ताकि पर्यावरण संतुलित रहे। यदि इस व्रत का पालन किया जाय तो भूखमरी, गरीबी, आर्थिक लूट, अकाल मृत्यु, युद्ध आदि प्रदूषणों का अंत हो सकता है।

(4) व्यभिचार का त्याग

चौथे व्रत में अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य समस्त प्रकार के यौन संबंधों को त्याज्य कहा है। जैन धर्मानुयायियों के लिये परस्त्रीगमन, वेश्यागमन तथा अतिभोग को सर्वथा त्याज्य कहा गया है। इससे एड्स जैसे असाध्य रोगों से सहज ही बचा जा सकता है। आज एड्स तथा यौन संबंधी अनेक रोग व प्रदूषण बड़ी तेजी से फैल रहे हैं जिससे मानव जाति के विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया है इसका कारण इस व्रत का पालन न करना भी है। कामोत्तेजक तथा अश्लील चित्र बनाना व देखना भी इस व्रत के दोष हैं। इससे आज विदेशों में एवं देश में भी अविवाहित लड़कियों के गर्भ रहने, गर्भपात कराने तथा तलाक आदि की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। ब्यूटी पार्लर, प्रसाधन सामग्री आदि से शारीरिक अस्वस्थता बढ़ती जा रही है। इन भयंकर प्रदूषणों से बचाव भी इस व्रत का पालन करने से ही संभव है।

(5) परिग्रह परिमाण व्रत

गृहस्थ को भूमि, भवन, खेत, वस्तु, धन-धान्य, गाय, भैंस आदि की आवश्यकता पड़ती है। अतः इन्हें अपने परिवार की आवश्यकता के अनुसार रखना, अधिक धन उपार्जन की दृष्टि से न रखना, इस व्रत के अन्तर्गत आता है। इस व्रत में परिग्रह या संग्रह को बुरा बताया गया है, उत्पादन को बुरा नहीं कहा गया है। आनन्द, कामदेव आदि आदर्श श्रावकों के हजारों गाये थी। उन्होंने उनका परिमाण किया है, बेचा नहीं है। परिमाण की गई गायों के बछड़े-बछड़ी होते, वे परिमाण में अधिक हो जाते, वे दूसरों को दान दे दिये, जिससे वे उनका पालन पोषण कर आजीविका चलाते। कोई भोजन करना तो उपादेय माने और अन्न उत्पादन को हेय (बुरा) माने, यह घोर विसंगति है। अतः उत्पादन सर्व हितकारी प्रवृत्ति से करना अपनी सुख-सुविधा के लिये उसका संग्रह न करना ही इस व्रत का मुख उद्देश्य है। इस व्रत के पालन से उदारता, सेवा, परोपकार की श्रेष्ठवृत्ति का विकास होता है। सेठ व श्रेष्ठ कहा ही उसे है— जो अपने धन का उपयोग दूसरों की सेवा में करे। इस व्रत का पालन किया जाय तो विश्व की गरीबी दूर हो जाय। आर्थिक शोषण का अन्त हो जाय और जीवन के लिये आवश्यक अन्न, वस्त्र, मकान आदि की कमी नहीं रहे। आज जो आर्थिक जगत् में होड़ लगी है संघर्ष हो रहा है, उसका कारण परिग्रह ही है। इस आर्थिक बुराई या प्रदूषण से बचने का उपाय है— परिग्रह का परिमाण व्रत। इस प्रकार व्रत के पालन से पर्यावरण का स्वयंमेव शुद्धिकरण हो जाता है।

(6) दिशा परिमाण व्रत

धन कमाने तथा विषय-सुख भोगने के लिये मनुष्य देश-देशान्तरों का भ्रमण करता है। यह भ्रमण वित्त, भोग-परिग्रह, लोक-एषणा व भोग-वृद्धि का हेतु होता

है। ऐसे भ्रमण को जैन धर्म में मानव जीवन के लक्ष्य शांति, मुक्ति, स्वाधीनता तथा परमानन्द प्राप्ति में बाधक माना गया है और इससे यथासंभव बचने के लिये इसकी मर्यादा करने का विधान किया गया है। वर्तमान में लोग धन कमाने, सुख-सुविधा प्राप्ति एवं अधिकाधिक भोग भोगने के लिये अपनी जन्मभूमि को छोड़कर शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। फलस्वरूप एक ही शहर में लाखों, करोड़ों लोगों की भीड़ इकट्ठी होती जा रही है। उन लोगों के यांत्रिक लाखों वाहनों तथा उद्योगों में लगे यंत्रों से निकली विषैली गैसों से, उनके मल-मूत्र से, उनके द्वारा फेंके हुए कूड़े कचरे से उनके, श्वास से निकली कार्बनडाई ऑक्साइड से भयंकर प्रदूषण फैलता जा रहा है। भारत में दिल्ली, कलकत्ता, कानपुर आदि शहर इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जहाँ श्वास लेने के लिये शुद्ध वायु मिलना कठिन हो गया है, जिससे दमा, क्षय, हृदय, कैंसर जैसी भयंकर बीमारियाँ बड़ी तीव्र गति से फैलती जा रही हैं। यदि दिशा परिमाण व्रत का पालन किया जाय अर्थात् अपने गांव में रहकर स्वास्थ्य प्रदायक, सादा, सहज स्वाभाविक, प्राकृतिक जीवन जिया जाय तो बड़े-बड़े नगरों में उत्पन्न होने वाले समस्त प्रदूषणों एवं दूषित पर्यावरण संबंधी समस्या से सहज में ही बचा जा सकता है।

(7) उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत

इस व्रत में फल-फूल, वस्त्र, विलेपन, खान-पान आदि समस्त उपभोग-परिभोग सामग्री की मर्यादा करने का विधान है। क्योंकि भोग-परिभोग ही आत्मिक दोषों, मानसिक द्वन्द्वों के रूप में प्रदूषणों के कारण है। अतः जैन धर्म में साधुओं के लिये तो इन्हें पूर्ण त्याज्य ही कहा गया है। गृहस्थ के लिये भी भोगों की वृद्धि को हेय माना है और इन्हें सीमित मर्यादित रखने का विधान है।

जैन धर्म का मानना है कि उपभोगवादी संस्कृति ही समस्त दोषों व प्रदूषणों की जननी है। अतः जब तक संस्कृति का आधार उपभोग रहेगा तब तक प्रदूषण भी बना रहेगा। कारण कि किसी वस्तु का दुरुपयोग करने से ही प्रदूषण पैदा होता है। वस्तु के सदुपयोग से वस्तु का जितना उपयोग होता है, उससे अधिक उसका उत्पादन होता है। उसका अनावश्यक व्यय (अपव्यय) नहीं होता है। भोगवादी संस्कृति पशुता की द्योतक है, पशु जीवन प्रकृति के आधीन है। पशु-पक्षी भूख लगने पर ही खाते हैं, भूख नहीं होने पर नहीं खाते हैं। इस प्रकार प्रकृति का संतुलन बना रहता है। परन्तु मनुष्य भूखा होने पर भी चाहे तो नहीं खाये और भूख न होने पर भी स्वाद के वश भोजन कर लेता है। अर्थात् मनुष्य का जीवन प्रकृति के आधीन नहीं है। वह प्रकृति से अपने को ऊपर उठाने में स्वतन्त्र है। यही मानव की विशेषता भी है। मानव इस स्वतन्त्रता का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों कर सकता है।

सदुपयोग है- प्रकृति का यथासंभव कम या उतना ही उपयोग करना जितना जीवन के लिये अत्यावश्यक है। इससे प्रकृति की देन का/वस्तुओं का व्यर्थ व्यय नहीं होता है और प्रकृति का संतुलन बना रहता है। भारतवर्ष की संस्कृति में अन्न को देवता माना गया है। अन्न के एक दाने को भी व्यर्थ नष्ट करने को घोर पाप या अपराध माना जाता रहा है। पेड़ के फूल, पत्ते व फल को व्यर्थ तोड़ना अनुचित समझा जाता रहा है। पेड़-पौधों को क्षति पहुंचाना तो दूर रहा, उलटा उन्हें पूजा जाता है- खाद और जल देकर उनका संवर्धन व पोषण

किया जाता है। यही कारण है कि आज से केवल एक सौ वर्ष पूर्व भारत में घने जंगल थे। जब से उपभोक्तावादी संस्कृति का पश्चिमी देशों से भारत में आगमन हुआ, प्रचार-प्रसार हुआ, इसके पश्चात् सारे प्रदूषण पैदा हो गये, वनों का विनाश हो गया। अनगिनत वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों की जातियों का अस्तित्व ही मिट गया। जहाँ पहले सिंह भ्रमण करते थे आज वहाँ खरगोश भी नहीं रहे।

वर्तमान में विज्ञान के विकास के साथ भोग सामग्री अत्यधिक बढ़ गई है तथा बढ़ती जा रही है, जिसके फलस्वरूप रोग बढ़ गये हैं, और बढ़ते ही जा रहे हैं। उदाहरणार्थ टेलीविजन को ही लें, टेलीविजन के समीप बैठने से बच्चों में रक्त कैंसर जैसा असाध्य रोग बहुत अधिक बढ़ गया है। आंखों की दृष्टि तो कमजोर होती ही है। टेलीविजन के पर्दे पर जो चलचित्र दिखाये जाते हैं, उनमें प्रदर्शित अभिनेता-अभिनेत्री के नृत्य, गान, हावभाव, वेशभूषा व अन्य भोग-सामग्री से दर्शकों के मन में कामोद्दीपन तो होता ही है साथ ही मन में अनगिनत भोग भोगने की कामनाएँ/ वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, उन सबकी पूर्ति होना संभव नहीं है। कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति न होने से तनाव, हीनभाव, दबाव, द्वन्द्व, कुंठाओं तथा मानसिक ग्रंथियों का निर्माण होता है। जिससे व्यक्ति मानसिक रोगी होकर जीवन पर्यन्त दुःख भोगता है, साथ ही रक्तचाप, हृदयरोग, कैंसर, अल्सर, मधुमेह जैसे शारीरिक रोग का शिकार भी हो जाता है और इसके फलस्वरूप शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है। फिर शारीरिक रोगों की चिकित्सा के लिये एन्टीबायोटिक दवाइयाँ ली जाती हैं, जिससे लाभ तो तत्काल मिलता है, परन्तु जीवन-शक्ति नष्ट हो जाती है। फलतः आयु घटकर अकाल में ही वे काल के गाल में समा जाते हैं, वर्तमान में उत्पन्न समस्त समस्याओं का मूल भोगवादी संस्कृति ही है।

(8) अनर्थदण्ड विरमण

अनर्थ शब्द 'अन्' (नञ्-अ) पूर्वक 'अर्थ' शब्द से बना है। अन् के अनेक अर्थ फलित होते हैं। उनमें मुख्य हैं अभाव, विलोम। अर्थ कहते हैं-मतलब को। अतः अनर्थ शब्द का अभाव से अभिप्राय है। बिना अर्थ, व्यर्थ, हित शून्य और विलोम रूप में अभिप्राय है- हानिप्रद। अतः जो कार्य अपने लिये हितकर न हो और दूसरों के लिये भी हानिकारक हो उसे अनर्थदण्ड कहते हैं। जैसे- मनोरंजन के लिये ऊँटों की पीठ पर बच्चों को बांधकर ऊँटों को दौड़ाना जिससे बच्चे चिल्लाते हैं तथा गिरकर मर जाते हैं, मुर्गी को व सांडों को परस्पर में लड़ाया जाता है। आजकल सौन्दर्य प्रसाधन- सामग्री के निर्माण में पशुओं का वध तो होता ही है तथा सामग्री का उपयोग करने वाले के स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जो स्वादिष्ट वस्तुएँ बनाती हैं, उससे उन खाद्य पदार्थों के विटामिन- प्रोटीन आदि प्रकृति प्राप्त पोषक तत्व तो नष्ट हो ही जाते हैं, साथ ही उनका मूल्य बीसों गुना हो जाता है जो अर्थ की बहुत बड़ी हानि या दंड है अर्थात् अनर्थदण्ड है। आज भोग-परिभोग के लिये जिन कृत्रिम वस्तुओं का निर्माण हो रहा है, उन वस्तुओं के लाभकारी गुण या तत्व तो नष्ट हो ही जाते हैं, साथ वे वे स्वास्थ्य तथा आर्थिक दृष्टि से हानिकारक भी होती हैं, अतः वे अनर्थदण्ड रूप ही हैं। यही नहीं तली हुई चरपरी-चटपटी मिर्च, मसालेदार वस्तुओं को भी अनर्थदण्ड रूप में लिया जा सकता है, क्योंकि ये शरीर के लिये हानिकारक होती हैं, पाचन शक्ति बिगाड़ती है। आस्ट्रेलिया, यूरोप आदि देशों के विकसित नागरिक स्वास्थ्य के

लिये ऐसी तली हुई, मिर्च, मसालेदार वस्तुओं को प्रयोग में लेना उचित नहीं मानते हैं। अतः इन्हें भी अनर्थदण्ड के रूप में लिया जा सकता है। ये शरीर के लिये हानिकारक होती हैं, पाचन शक्ति बिगाड़ती हैं। सिन्थेटिक वस्त्र भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं, इसीलिये अब विदेशों में पुनः सूती वस्त्रों को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। जिससे इनकी मांग बढ़ी है। यदि अनर्थदण्ड विरमण व्रत का पालन किया जाय तो इन सब प्रदूषणों से बचा जा सकता है।

(9) सामायिक (10) देशावकासिक (11) पौषधव्रत

ये तीनों व्रत मानसिक एवं आत्मिक विकारों/प्रदूषणों से बचने तथा गुणों का पोषण करने के लिये हैं। अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव में रहना, उनसे प्रभावित न होना, उनके प्रति राग-द्वेष न करना, मन का संतुलन न खोना सामायिकी है। इससे व्यक्ति परिस्थिति से अतीत हो जाता है, ऊपर उठ जाता है। फलतः सांसारिक सुख-दुःख के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। फिर उसे तनाव, हीनभाव, अन्तर्द्वन्द्व, भय चिंता जैसे मानसिक रोग या विकार नहीं सताते हैं।

देशावकासिक व्रत छठे दिशि तथा सातवें भोग-परिभोग परिमाण व्रत इन दोनों व्रतों का ही विशेष रूप है। छठे तथा सातवें व्रत में दिशा व भोग्य वस्तुओं की जो मर्यादा की गई है, उसे प्रतिदिन के लिये लागू करना इस व्रत का उद्देश्य है। पौषध व्रत में सांसारिक प्रवृत्तियों से एक दिन के लिये विश्राम लेना होता है। इसमें साधुत्व का आचरण करना है, साधुत्व (त्याग) का रस चखना है। विश्राम से शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, विवेक का उदय होता है, संवेदनशक्ति का विकास होता है अर्थात् आत्मिक गुणों का पोषण होता है।

(12) अतिथि संविभाग व्रत

गृहस्थ जीवन में दान का बहुत महत्त्व है। गृहस्थ जीवन का भूषण ही न्यायपूर्वक उत्पादन व उपार्जन करना तथा उसे आवश्यकता वाले लोगों में वितरण करना है। जो उत्पादन व उपार्जन नहीं करता है, वह अकर्मण्य व आलसी है, यह गृहस्थ जीवन के लिये दूषण है। इसी प्रकार जो उत्पादन करके संग्रह करता है वह भी दूषण है। गृहस्थ जीवन की सुन्दरता व सार्थकता अपनी न्यायपूर्वक उपार्जित सामग्री से बालक, वृद्ध रोगी, सेवक, संत, महात्मा आदि उन लोगों की सेवा करने में है जो उपार्जन करने में असमर्थ हैं।

जैन धर्म में तप का बड़ा महत्त्व है। तप में 1. अनशन 2. ऊनोदरी-भूख से कम खाना 3. आयंबिल-रस परित्याग आदि सम्मिलित हैं। ये सभी तप भोजन से होने वाले प्रदूषणों को दूर करते हैं। उदर को अतिभोजन तथा गरिष्ठ भोजन को पचाने में कठिनाई होती है। जिससे पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है तथा पेट में सडान्ध पैदा हो जाती है जो गैस (वायु) बनाती है, जिससे अनेक रोग पैदा होते हैं। कहा जाता है कि सभी रोगों की जड़ उदर विकार है, पेट की खराबी है। यह पेट की खराबी तथा इससे संबंधित अनगिनत रोग उपवास, ऊनोदरी तथा आयंबिल से मिट जाते हैं।

रूस में तो सभी रोगों के उपचार के लिये उपवास चिकित्सा प्रचलित है। पूज्य श्री घासीलालजी म.सा. ने हजारों रोगियों का रोग आयंबिल तप से ही दूर किया था। आयंबिल में एक ही प्रकार का घृत, तेल आदि विगय से रहित भोजन किया जाता है, जिससे जितनी भूख है, उससे अधिक भोजन से बचा जा सकता

है। एक ही रस के भोजन में आमाशय को अनजाईम—जिनसे भोजन पचता है, बनाने में कठिनाई नहीं होती है। इसीलिये आस्ट्रेलिया निवासी प्रायः एक समय में एक ही रस का भोजन करते हैं। यदि मीठे स्वाद की वस्तुएँ खाते हैं तो उनके साथ खट्टे, नमकीन आदि स्वाद की वस्तुएँ नहीं खाते हैं। तात्पर्य यह है कि शारीरिक रोगरूप प्रदूषण को दूर करने की दृष्टि से तप का बड़ा महत्त्व है। इसी प्रकार रात्रि भोजन त्याग, मांसाहार त्याग, मद्य त्याग, शिकार त्याग आदि जैन दर्शन के सिद्धान्तों से शारीरिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक प्रदूषणों से बचा जा सकता है।

निष्कर्ष — प्राणी के जीवन के विकास का संबंध प्राण—शक्ति के विकास से है, न कि वस्तुओं के उत्पादन से तथा भोग परिभोग सामग्री की वृद्धि से। आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक, भौतिक, पारिवारिक, सामाजिक क्षेत्र के पर्यावरणों में प्रदूषण की उत्पत्ति प्राप्त वस्तुओं के दुरुपयोग से, भोग से होती है, क्योंकि भोग से ही समस्त दोष पनपते हैं, जो प्रदूषण पैदा करते हैं और भोग के त्याग से, संयम मय मर्यादित जीवन से उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में विकास या पोषण होता है। पर्यावरण प्रदूषण से बचें तथा पर्यावरण का समुचित शुद्धिकरण हो, यही जैन दर्शन के तत्त्वज्ञान का उद्देश्य है। किसी भी प्रकार का वातावरण दूषित न हो, इसके लिए जैन दर्शन में गृहस्थ धर्म के रूप में उपर्युक्त बारह व्रतों के पालन का प्रतिपादन किया गया है। इन बारह व्रतों में प्रथम तीन व्रत दूसरों के प्रति होने वाली बुराइयों व प्रदूषणों से बचाते हैं। चौथे से लेकर सातवें तक तथा दसवाँ व्रत भोग—परिभोग मानव को मर्यादित रखने के लिए है, जिनसे पर्यावरण का संतुलन बना रहता है। आठवाँ व्रत सामाजिक पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाता है। नवमा व ग्यारहवाँ व्रत आत्म—पर्यावरण—शुद्धि का पोषक है। बारहवाँ व्रत सर्व हितकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने वाला है। इस प्रकार जैन आचार संहिता समस्त प्रकार की पर्यावरण शुद्धि में बड़ी सहायक है तथा पर्यावरण संरक्षक भी है।